घर

ख़ालिद फ़रहाद धारीवाल

घर

मुन्नी का पिता, खुदा उसको बख्शीश फरमाए - जब जीवित था तब कुछ वजन था मेरा। अब तो तिनके-सी हल्की हुई पड़ी हूँ। बहू मुझे समझती ही कुछ नहीं। बेटा है तो वह अपने मुँह! जो जी चाहे करें। मैं न किसी को देने में न लेने में। और फिर अब मुझे कौन पूछता है? खाट पर बैठी मैं दिनभर बच्चे खिलाती रहती हूँ।

मुन्नी से मिलने को जी करता था। पहले तो पौष का महीना गुजरते ही आ जाया करती थी वह। अब चैत बीत रहा है। उसने चक्कर ही नहीं लगाया। मैं जब तक खुद जाने लायक थी, जाकर मिल आया करती थी, पर अब इस बूढ़े शरीर को कहाँ बसों में घसीटती फिरूँ? बेटे से कहा था कि जा, खैर-खबर ले कर आ। साली के यहाँ चला गया था वो, पर अपनी बहन मुन्नी के लिए उसके पास समय ही नहीं।

मुन्नी के लिए मैं कुछ उदास भी जल्दी हो जाती हूँ। चंदरी में मेरा मोह ही बहुत है। क्या करूँ, माँ जो हुई। मुझे ही नहीं, हरेक माँ को बेटी से ऐसी ही प्रीत होती है।

इस मोह का कारण माँ बेटी का रिश्ता तो है ही, इसके अलावा दोनों में औरत होने की साझ भी एक कारण है। जब कभी गाँव जाती तो माँ बहिश्तन कहा करती, 'कमबख्त, इतनी देर लगा दी तूने?' मैं कहती, 'तू तो ऐसे कह रही है जैसे मेरी ही राह देखती रहती है हरदम।' इस पर माँ मेरा माथा चूमकर कहती, 'तो और क्या?'

अब मुझे खुद जब मुन्नी का इंतजार रहता है तो माँ की तड़प का अहसास होता है। पंद्रह-बीस बरस हो गए मुन्नी के विवाह को, पर अभी कल की ही बात लगती है, जब मुन्नी इस आँगन में उछलती-कूदती थी। जब मुन्नी के विवाह की बात चली तो उसका पिता - खुदा उसको बख्शीश फरमाए, कहने लगा - 'सच ही कहते हैं लोग, बेटियाँ बकायन के पेड़ों जैसी हुआ करती हैं। मुन्नी के जवान होने का पता ही नहीं लगा।' फिर आह भर कर उसने कहा था, 'रब ने बेटियों का अन्न-पानी बेगाने घर न लिखा हो तो माँ-बाप एक रोयाँ भी उखाड़कर न दें इनका।'

मैंने उसकी गंभीरता को तोड़ने के लिए कहा था, 'हम भी तो अपने माँ-बाप के घर में ऐसे ही प्यारी थीं।'

जब मुन्नी को देखने वालों ने आना था, उससे एक दिन पहले मुन्नी की व्यस्तताएँ देखने वाली थीं। अपनी भाभी से आगे बढ़कर उसने नए सिरे से घर की सफाई की। जब घर सज गया तो घर का मुँह-मत्था ही कुछ और था। लगता ही नहीं था कि यह पहले वाला घर है। फिर वह सहेलियों को लेकर अंदर घुसी रही। बाहर से हालाँकि कुछ दिखाई नहीं देता था कि अंदर क्या हो रहा है, पर मैं जानती थी कि मुन्नी की सहेलियाँ उसको भिन्न-भिन्न रंगों के कपड़े पहनाकर उनकी छब के बारे में बता रही होंगी।

जब मुन्नी को देखने वाले आए, उस दिन एक अजीब-से अहसास के घेरे में फँसी हुई थी मुन्नी। कुछ नजरें उस पर ही जमी हुई थीं। उसको अपने अपने पैमानों के तराजू में तोलती हुई नजरें। बेचारी मुन्नी!

लाज के महीन वर्क में लपेटकर अपने आप को पेश करती हुई मुन्नी पर मुझे बड़ा तरस आया उस दिन। मेरी माँ को भी मुझ पर उस दिन ऐसा तरस आया होगा। फिर मेहमानों के विदा होने से कुछ देर पहले के पल - फैसले के पल। जिनमें लड़की किसी भी रिश्ते से मुक्त सिर्फ एक औरत होती है। यदि उस समय उसमें से किसी को अपनी बेटी-बहन दिखाई दे, तो फिर उसकी निंदा कौन करे? पसंद किए जाने की आस के साथ-साथ नापसंद किए जाने का खौफ। जब मुन्नी की होने वाली सास ने जाते हुए मुन्नी के सिर पर प्यार देकर उसकी हथेली पर रुपया रखा तो मेरी आँखें भर आईं। पता नहीं ये खुशी के आँसू थे या गमी के।

जब अभी मुन्नी का विवाह नहीं हुआ था, वह बड़ा खयाल रखती थी इस घर का। क्या मजाल, कोई शै इधर-उधर हो जाए। यदि कोई हो जाती तो वह झट लड़ने को दौड़ती। बहुत बार अपनी भाभी से ही कहासुनी हो जाती उसकी। मैं कई बार मुन्नी को समझाती कि तू क्यों चिंता करती है इस घर की? घर वाले सँभालें, न सँभालें, तुझे क्या? तो वह पलटकर कहती, 'क्यों, मेरा नहीं है यह घर?'

विवाह के बाद मैंने एक बार मुन्नी से पूछा, 'मुन्नी एक बात तो बता।' कहने लगी, 'कौन सी बात?' तो मैंने कहा, 'अब जब तू आती है तो तेरे सामने घर के अंदर धूल जमी होती है। चीजें इधर-उधर बिखरी रहती हैं। अब तूने कभी हाथ नहीं हिलाया।' बोली, 'माँ, डर लगता है।' मैंने पूछा, 'किस बात से?' तो कहने लगी, 'घर वालों से। कहीं

कह ना दें, हमारा घर है हम सँभालें, न सँभालें, तुझे क्या?' मैं कहना चाहती तो कह सकती थी कि तू तो लड़ पड़ा करती थी कि ये घर क्या मेरा नहीं है? और अब! पर मैंने कहा नहीं। शायद इसलिए कि मैं उसकी गंभीरता में वृद्धि नहीं करना चाहती थी।

विवाह के बाद तीसरी बार मायके आई मुन्नी से मैंने पूछा, 'तेरा जी तो लगा हुआ है न वहाँ?' हल्का-सा हँसकर वह कहने लगी, 'हाँ, पर अभी ख्वाबों में माहौल यहीं का ही होता है।'

मुन्नी का बचपन मुझे याद आता है। गली में कोई बारात उतरी थी। पिछले-पहर हम सभी भीगी आँखों से लड़की को विदा कर रहे थे। मेरी टाँगों से लिपटी हुई मुन्नी ने मुझसे पूछा था, 'आप लोग क्यों रो रहे हैं?' मैंने उसे बताया था कि रजिया अपने घर जा रही है।' मुन्नी ने फिर सवाल किया था, 'रजिया दीदी क्यों रो रही है?' मैंने अपनी बात दुहराई थी, 'रजिया अपने घर जा रही है।' यह सुनकर मुन्नी ने कहा था, 'यदि अपने ही घर जा रही है तो रोती क्यों है?' इस बात का कोई जवाब देने की बजाय मैंने मुन्नी को छाती से लगाकर बाँहों में कस लिया था और उसे बेतहाशा चूमने लगी थी।

मुन्नी बच्ची ही थी जब एक बार दौड़ती हुई आई और कहने लगी, 'माँ! तुझे हँसी वाली एक बात बताऊँ?' मैंने कहा, 'बता।' तो बोली, 'ताई दूसरे गाँव हो कर आई है। मैंने पूछा - ताई कौन से गाँव तू गई थी? बोली - अपने गाँव। और जब मैंने कहा - यह किसका गाँव है? तो बोली - तेरे ताया जी का।' बात सुनाकर मुन्नी की हँसी नहीं रुक रही थी।

जब औरत को उम्र के किसी भी हिस्से में तलाक के तीन बोल किसी जगह से बेदखल कर सकते हों, तो वह उस जगह को अपना कैसे कह सकती है? मेरे मन में ख्याल आया, पर मैंने इसे मुन्नी के साथ साझा नहीं किया, क्योंकि मैं उसको सोच में डालकर उसकी हँसी को छीनना नहीं चाहती थी।

जब अभी मुन्नी के विवाह को अधिक समय नहीं हुआ था, मैं कभी कभी सोचती, इस बार आई तो पूरे छह महीने रखूँगी उसको। पर फिर अपनी इस सोच पर हँसी आ जाती। भला उस पर अब हमारा क्या अख्तियार? फिर यह 'बोली' मेरे होंठों पर आ जाती -

'मापे...

लाडाँ नाल पाल के धीयाँ,

हो जाण पराए आपे...।'

और मैं सोचती, अब तो साईं की मर्जी, रहने दे, न रहने दे। और फिर बेटियाँ ससुराल के घर में ही शोभा देती हैं।

एक बार मुन्नी का ससुर आया हुआ था, उसको लेने कि पड़ोसियों की सलमा भी ससुराल से आ गई। मुन्नी के बचपन की सहेली। अब मुन्नी का मन करे कि सलमा आई है तो वे दोनों कुछ दिन एक साथ रह लें। एक दूसरे के पास बैठें, कुछ सुनें, कुछ सुनाएँ। मुन्नी चाहे कि हम उसे भेजने से इनकार कर दें, पर उसका ससुर पहली बार लेने आया था, उसको खाली हाथ नहीं मोड़ सकते थे हम। इसलिए मुन्नी को जाना ही पड़ा।

एक बार मुन्नी की खाला आई हुई थी कि मुन्नी भी आ गई। उसकी खाला कहे कि मुन्नी इस बार हमारे संग चल। मैं कहने लगी थी कि न बहन, अब मुन्नी बेगानी अमानत है। हम नहीं भेज सकते। इस पर मुन्नी खुद ही बोल उठी, 'मैं जरूर जाती, पर खाला मैंने उनसे नहीं पूछा हुआ। अपनी मर्जी से चले जाओ तो फिर गुस्से होते हैं वह।'

अब कभी जब आए तो मैं कहती हूँ, 'कंबख्त, इतनी देर बाद?' इस पर कहेगी, 'घर के कामों से फुर्सत नहीं मिलती।' फिर मैं गुस्से की रौ में कहती हूँ, 'पता नहीं किन कामों में फँसी रहती है तू?' वैसे मैं अंदर से शांत होती हूँ कि बेटी अपने घर में अच्छी रची-बसी है।

बेटियों को विदा करते समय कुछ न कुछ देना बनता है। खाली हाथ नहीं भेजते। उन्होंने कहाँ सदा यहीं खाते रहना होता है, पर मायके घर से आस होती है बेटियों को। मायके घर की शै की अजीब ललक होती है। पिछली बार जब मुझसे प्यार लेकर चलने लगी तो मैंने कहा, 'ठहर जा मुन्नी, थोड़ा गुड़ लेती जा।'

मैंने कहते हुए बहू की ओर देखा था, जिसका अर्थ था कि वह उठकर गठरी बाँध दे, पर वह स्तब्ध बैठी रही। हिली ही नहीं। जब मैं खुद उठकर अंदर गई तो मुन्नी ने कहा, 'नहीं माँ...। रहने दे, मैं कहाँ बोझ उठाती फिरूँगी।' और दहलीज से बाहर हो गई। शायद मुन्नी को कुछ आभास हो गया था।

वह घर जो कभी मेरा घर था, अब मेरी बहू का घर है। मुन्नी की तरह मुझे खुद को भय होता है, घर की किसी शै को हाथ लगाते हुए मैं अंदर से काँप जाती हूँ।